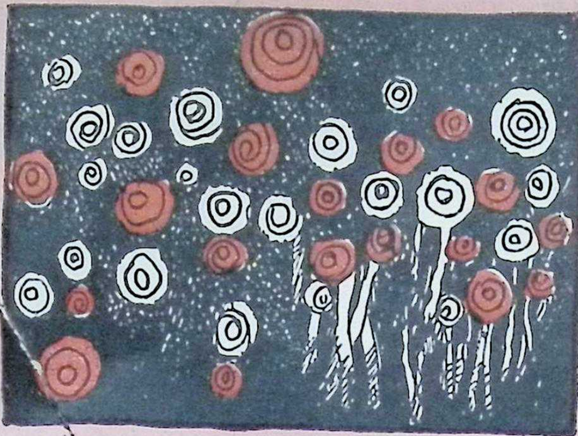
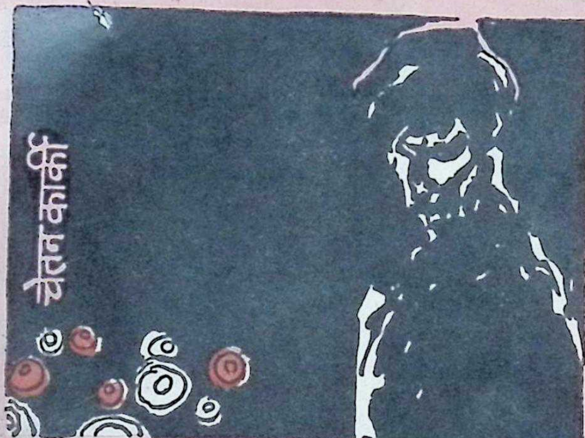




कल्पना टूट चुकी है

कल्पना टूट चुकी है

चेतन कार्की

Dr. Subodh Shukla
with
Love

2063-10-3

कल्पना टूट चुकी है

चेतन कार्की

प्रथमावृत्ति- जनवरी १६८०
आवरण सज्जा
उज्ज्वल कुन्दन ब्यापू

मुद्रक:-
अरनिको प्रिन्टिङ्ग प्रेस, ठमेल, काठमाण्डू.

आवरण मुद्रक
पिन्ट-ओ-आर्ट प्रेस, हाज़रा रोड कलकत्ता-२६

मूल्य { भा. रु. ६।-
ने. रु. ८।-

दो शब्द—प्रकाशिका के

'जीवन'...कवि के शब्दों में...'एक पहाड़ी मार्ग की तरह है, जिसमें अनगिनत मोड़ हैं, उतार चढाव हैं. किस मोड़ के पश्चात् कैसा दृश्य देखने में आए, कहना कठिन है.' पर, भावी कठिनाईयों की आशङ्का से, जीवन की यात्रा रोकी तो जा नहीं सकती.

जाने कैसी कैसी कल्पनाएँ मानव मन करता है, किन्तु क्या सभी साकार हो पाती हैं ? इतना अवश्य है कि लोक व्यवहार से अनभिज्ञ किशोर कल्पनाएँ, जो यौवन का सोपान चढ़ते चढ़ते यथार्थ से टकरा, टूट कर विखर जाती हैं, हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं.

छात्र जीवन की उन्हीं किशोर कल्पनाओं की चयनिका है प्रस्तुत् संग्रह– 'कल्पना टूट चुकी है.'

सौन्दर्योऽपासक मन 'कविता' पर रमा तो, पर मार्ग में पड़ आई अन्य छायाओं पर भी अनुरक्त होता रहा और भटकता रहा, मरुभूमि में प्यासे मृग की तरह किन्तु हर वार थका हारा लौटता रहा 'कविता' के पास ; जहाज के पंछी की तरह.

जव प्यार मिला था तो समझ नहीं थी; जव समझने योग्य हुआ तो पाया कि वह 'कविता' को खो चुका है.

जैसी भटकन मन में है, वैसी ही भाषा में भी है. कहम संस्कृत गर्भित हिन्दी है तो कहीं अरवी फारसी युक्त उर्दू.

यों आम वोलचाल की हिन्दोस्तानी भाषा भी प्रचुर है. पर जो है वह कवि की स्वानुभूत है और कतिपय अनुभूतियों को सहेज कर रखने का श्रेय कवि दे न दे प्रस्तुत् चयनिका मुझे अवश्य देगी इसी विश्वास को लेकर इसे पाठकों के सम्मुख रख रही हूँ.

व्यक्तिपरक होने पर भी यदि आपको लगे कि ऐसा ही अनुभव आपका भो है तो पहुँचिए एक वार फिर, कालेज के रमणीय प्राङ्गण में; .....जहाँ हर रूप मर मिटने के लिए था और हर मुस्कान जीने के लिए; हर मित्र मण्डली एक कवि गोष्ठी थी और हर घटना एक कविता......और कह डालिए–

हूँ भ्रमर ही अगर मैं तो पुष्पा तुम्हीं हो
हूँ चञ्चल लहर मैं तो सरिता तुम्हीं हो
अगर दीप तुम हो तो मैं ही शलभ हूँ
इस तिरस्कृत कवि की कविता तुम्हीं हो

गङ्गा कार्की

कविता की कथा

परीक्षा की छुट्टियाँ थी .

माँ को 'प्रभात टाकिज' में 'शिव शक्ति' फिल्म दिखा, केन्टोन्मेण्ट (छावनी) की वस में बैठाकर मैं साइकिल पर लौट रहा था. रार्जषि जुद्ध रोड (यङ्ग रोड) की पुलिया से पहले पटियाला हाउस (तेल भवन) के सामने 'नन्द' शहर की ओर जाता मिला. मेरे लाख मना करने पर भी मुझे लौटा ले गया; पहले हीरा टेलर्स की दुकान पर जहाँ से उसने कुछ नए सिलवाए कपड़े लेने थे और वाद में 'उसके' यहाँ.

'उससे' और उसकी माँ से मेरा परिचय कराया नन्द ने. उसकी माँ वहुत खुश हुई थीं और 'वह' परिचय कराने पर शिष्टाचांर के नाते हाथ जोड़ कर नन्द के साथ कमरे के अन्दर चली गई थी. मुझे उसकी माँ ने अपने साथ वाहर ही बैठा लिया था.

करीव एक घण्टा हम उसके यहाँ रहे होंगे. इसी वीच 'राऊण्ड' लेकर उसके पिताजी भी आ गए थे. उनके साथ सात आठ वर्ष की लड़की भी थी, परिचय कराया गया तो ज्ञात हुआ कि वह 'उसकी' वड़ी वहन की छोटी बेटी है– लक्ष्मी.

उसके पिताजी अल्प भाषी थे. मेरा परिचय जानने के वाद दो चार वातें मेरे पिताजी के वारे में पूछ कर❀और एक

❀ उसके पिताजी मेरे पिताजी से सीनियर थे ९ गोर्खा वटालियन में और जमदार (जे. सी. ओ) पद से सेवा निवृत हुए थे . आजकल भारतीय सेना में जमदार के स्थान पर नायव सूबेदार नामकरण किया गया है .

मेरी तरफ देख कर मुस्कुराया था और मैं कट कर रह गया था. उन दोनों और हमारे वीच क़रीव पचास गज का फासला था. वे दोनों बातें करते हुए चल रहे थे और हरीश मेरे घावों पर मलहम लगाने की कोशिश कर रहा था "मैं कहता था न चेतन ! लड़कियों से कोई उम्मीद नहीं रखनी चाहिए."

(उसी उम्र में वह अपने को 'प्रेम' में अनुभवी समझता था. खैर...... यह अलग क़िस्सा है) तभी मुझे लगा कि वह तमक कर खड़ी हो गई है. हमने अपनी चाल तेज़ कर दी थी. फासला कम हो गया था और हमने सुना वह कह रही थी "यस्तै हुन्चन् शरीफ ? अर्काको शरीरवाट चुन्नी तानेर भाग्ने ? शरम पनि छैन. गोर्खाली दिदी बैनीहरूलाई अरू गुण्डाहरूवाट वचाउन त परै जाओस आफै गुण्डागर्दी गर्ने ? छिः !" ꕥ

हम और नजदीक पहुँचे थे. लड़का घिघिया रहा था "नहीं वहन ! मेरा क़ोई दोष नहीं है. वह साला मेरी

ꕥ देहरादून के नेपालियों (गोर्खालियों) की भाषा. अर्थ है:– ऐसे ही होते हैं शरीफ़ ? दूसरों के शरीर से चुन्नी खींच कर भागने वाले ? (चुन्नी–सलवार कमीज के साथ, लड़कियों द्वारा सिर, गला और वक्ष को ढकने के लिए प्रयोग की जाने वाली महीन ओढ़नी) लाज भी नहीं आती । गोर्खाली वहिनों को दूसरे गुण्डों से वचाना तो दूर, खु.द गुण्डागर्दी करते हैं. छिः !

साइकिल में आगे बैठा हुआ था और मेरे ना–ना करते–करते भी उसने तुम्हारी चुन्नी खींच ली. उस वक्त तो मैं हक्का वक्का रह गया पर वाद में साले को मैंने खूब लताड़ा; दो चार धौल भी जमाए और... ... ... "

"रहने, दो रहने दो – ऐसा ही होता है धौल जमाने वालों का चेहरा ? ख़बरदार ! आइन्दा ऐसी हरकत की तो मुझे पिताजी से कहने को मजबूर होना पड़ेगा. हुँह ! वड़े आए भाई वन कर. "

और साइकिल पर सवार होकर दन्नऽ से सड़क के बाईं तरफ वाले गेट के अन्दर घुसती चली गई थी वह.

इस वार मैंने मुस्कुरा कर हरीश को देखा था. हरीश भी मुस्कुराया था और कुछ दूर साइकिल पकड़े, मुंह वाए खड़े उस लड़के को पुकारा था 'ऐ भाई !'

फिर – हम दोनों ने लड़के को चरित्र के ऊपर वारी वारी से अच्छा खासा लेक्चर दे डाला था; चेतावनी भी दी थी कि आइन्दा 'उसकी' तरफ आँख उठा कर देखने की जुर्रत न करे.....वर्ना...... वहुत वौखलाया था बेचारा लड़का पर उसकी एक न सुनी थी.

एक दिन हरीश को वतलाया था मैंने–

कल मैं 'विज्जी' (पिताजी की यूनिट के सुबेदार हेड़ क्लर्क की चार वर्षीया लड़की) के साथ खेल रहा था. पास ही की सड़क पर साइकिल पर सवार एक ऐसी लड़की गुजरी कि क्या कहूँ यार ! पर लगता है मैं उसे वहुत पहले से

जानता हूँ.

फिर–

कल मैंने रेजीमेण्टल सिनेमा में 'मिस माला' फिल्म देखी. पिक्चर शुरु होने से पहले वही साइकिल सवार मेरे सामने वाले सीट पर आकर बैठी. साथ में शायद उसकी वहिन थी. हरीश ! मैंने फिल्म कम देखी उसको ज्यादा देखता रहा. मुझे लगा कि वह भी वार वार मुड़कर मुझे ही देख रही थी.

और हरीश ने हँस कर कहा था "हाँ भाई ! तुम्हारा चेहरा ही ऐसा है."

मैं अपनी वदशक्ली का अहसास कर मन मसोस कर रह गया था ।

इसी प्रकार–

कुछ दिन पहले प्रभात टाकीज के सामने वाले दीपक पुस्तकालय में, जहाँ से मैं अक्सर किराए पर उपन्यास लाया करता था, मैं खड़ा था. सड़क से 'वह' और उसकी माँ गुजरीं. लगा उसने मेरी तरफ ईशारा करके अपनी माँ से कुछ कहा और उसकी माँ भी मेरी ओर देख कर मुस्कुराईं थीं.

आज–

जाने कव से जानी पहचानी लगने वाली, अनायास ही मेरे हृदय के किसी कोने में घर वना कर वैठी वह, अन्दर कमरे में नन्द के साथ हँस हँस कर वातें कर रही थी और मैं अनमना सा वाहर वैठा उसकी माँ की वातों का उत्तर देने

का अरुचिकर प्रयत्न कर रहा था .

नन्द वाहर निकला. साथ में वह भी. लगा तो सही कि वह मेरी तरफ देख कर मुस्कुराई है पर मैं चाह कर भी उसकी तरफ न देख सका. यह कहना ज्यादा बेहतर होगा कि नन्द के साथ उसकी घनिष्टता के अहसास से मैं अन्दर ही अन्दर एक अजीव सी कसक महसूस कर रहा था जिसकी वजह से मैंने उसकी तरफ देखना न चाहा. खैर.......

विदा लेते समय उसकी माँ ने कहा था "वेटा ! पुरानी जान पहचान वालों में तुम्हीं लोग हो. कभी कभी आते रहा करना."

इससे पहले कि मैं जवाव दूँ, नन्द वोल उठा था "अरे ! यह तो आज ही कहाँ आ रहा था. मैं ही जवरदस्ती खींच लाया हूँ"

(क्या जानो नन्द तुम, कि तुम्हारी यह जवरदस्ती मेरे लिए कितनी महंगीं पड़ी है)

मैं बड़ी मुश्किल से कह पाया था "मान न मान, मैं तेरा मेहमान होना कोई अच्छी वात होती भला ? जान न पहचान, कैसे चला आता ?"

उसकी माँ हँस कर वोली थीं "अव तो हो गई है न ?"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया था. 'उसने' वड़ी चुटीली आवाज़ में कहा था "छोड़ो भी माँ ! कोई न आना चाहे तो मजबूर क्यों किया जाए."

मैंने चौंक कर उसे देखा था पर फिर तुरन्त ही निगाहें फेर भी ली थी.

वह दिन था, है ओर शायद रहेगा, जीते जी कभी न भूल पाने वाला मेरो ज़िन्दगी का एक ऐसा दिन जिसने मुझे क्या से क्या बना दिया – जून ५,१९५५ का दिन.

उसके वाद की कहानी बहुत लम्बी है (फिर कभी सुनाऊँगा). लबालब खुशियों से भरी, सर्द आहों से भरी; चटकती धूप से भरी, घनी छाहों से भरी.

उन्हीं अवसाद से भरी घड़ियों में ही कभी 'दीपा' की रोशनी का सहारा लेना चाहा था मैंने; 'सरिता' की मौजों में बहकर किनारा पाना चाहा था मैंने; 'पुष्पा' की सुरभि में वीते दिनों की कड़वाहटों को भुलाना चाहा था मैंने; 'जानकी' और 'चंचला' के ख़यालों से खु.द को सुलाना चाहा था मैंने.

आज तक के सफ़र में बहुत उतार चढ़ाव देखे मैंने. कितने ही मोड़ों से गुज़रा हूँ और कितने ही पड़ाव देखे मैंने.

लेकिन – कहीं; कहीं भी वह न मिला मुझको, जो खो चुका हूँ मैं और अब तो– 'गङ्गा' की लहरों में समर्पित हो चुका हूँ मैं.

मंज़िल कहाँ ख़बर नहीं हमसफ़र तो है.

बहाँटारी, स्याङ्जा
गण्डकी अञ्चल.

चेतन कार्की

समर्पण

तुम्ही को
जो मुझे बाँध कर बाहों में
चल दी भटकाकर राहों में
और–अब बसती हो भावों में
कसकन मन्थन और आहों में

धन्यवाद सभी मित्रों को, जिन्होंने पढ़ा, सुना, सुनाया और इस चयनिका के प्रकाशन को उकसाया, मुद्रण की प्रक्रिया में सहयोग दिया और–श्रीमती गंगा कार्कीको जिन्होंने छपवाया.

कविता क्रम

तुम बिन सूना है संसार

तुम कुसुम कली मैं भँवरा काला
तुम मंज़िल मैं राही मतवाला
सारहीन हूँ मैं तुम विन प्रिये ! है यह जग निःसार
तुम विन सूना है संसार

साज़ मैं आवाज हो तुम
हूँ प्रिये ! तुम विन वेसुर
गीत मैं तो धुन तुम्हीं हो
मैं कविता तुम भाव मधुर
मेरे अन्तर के खोए सुर, मन वीणा के टूटे तार !
तुम विन सूना है संसार

तुम मेरे नैनों की ज्योति
अधरों की मुस्कान मधुर
ज्योति हीन भई अव आँखें
हुई हँसी होठों से दूर
हिए तो बन ही चुका विद्रोही, नहीं रहा उस पर अधिकार
तुम विन सूना है संसार

मार्च १९५६

बस यही एक अभिलाषा है

पूर्ण होगी यह लघु कामना तुमसे, ऐसी आशा है
वस......

जीवन नश्वर है जान चुका
चंचल लक्ष्मी को पहचान चुका
पर तनिक वताओ तो प्रियवर, क्या प्रेम की परिभाषा है ?
वस ......

जलते देखा दीप शिखा पर
परवानों को एक एक कर
फिर भी दिल क्यों किसी 'दीप' पर, जल मरने को प्यासा है ?
वस ......

दूर धरा से ऊँचे नभ में
देख चाँद व्याकुल हो मन में
है चकोर चुगता अँगारे, यह कैसा एक तमाशा है ?
वस ......

प्यास बुझी क्या सागर की कभी
पीकर इतनी नदियों का जल
तृप्त हुई क्या मानव तृष्णा
पाकर भी निज इच्छित फल
फिर कैसे शवनम से चातक, अपनी प्यास बुझाता है ?
वस यही एक अभिलाषा है

२६ अप्रैल १९५६

तुमसे है प्यार

मानस में अंकित है मेरे, तुम्हारी ही प्रतिमा साकार
तुमको मुझसे हो न हो, मुझको तो तुमसे है प्यार

रूप पुजारी शैशव से हूँ
कहने में तनिक संकोच नहीं
पर किसी छवि को देख इतना
उपजा हृदय में सोच नहीं

और याद तुम्हारी बन गई, मेरे साँसों का आधार
तुमको मुझसे हो न हो, मुझको तो तुमसे है प्यार

नारी आईं जीवन में मम
सुन्दर अनेक, एक से एक
पर आत्मविभोर नहीं कर पाईं
नहीं कोई हर्षातिरेक

और देख तुम्हें मन वीणा के तार उठे झंकार
तुमको मुझसे हो न हो, मुझको तो तुमसे है प्यार

तुम देख मुझे कतराती थी
तुम राह फेर कर जाती थी
पर जाते जाते भी मुड़ मुड़
तुम नेह वारी वर्षाती थी

और फिर हो जाती आरक्त, जब हो जाती आँखें चार
तुमको मुझसे हो न हो, मुझको तो तुमसे है प्यार

 →

याद तुम्हारी वन के प्रेरणा
काव्य करेगी मम मुखरित
पलक मूँद कर देखूँगा मैं
सुन्दर मुख तव मधुर स्मित
यहाँ नहीं तो मिल ही लेंगे, आखिर उस क्षितिज के पार
तुमको मुझसे हो न हो, मुझको तो तुमसे है प्यार
रात्रि के नीरव प्रहर में
जव सारा जग सोया होगा
मैं करवट वदलूँ, व्याकुल हो
जग सपनों में खोया होगा
तुम मीठी नीदं सुला जाना, सजा कर सपनों का संसार
तुमको मुझसे हो न हो, मुझको तो तुमसे है प्यार

जून १९५६

कैसे यह बतलाऊँ

अजी मुझे है प्यार तुमसे कैसे यह वतलाऊँ ?
जो समझना ही न चाहो, मैं कैसे समझाऊँ ?

सो रही है सारी दुनियाँ, नींद मुझे नहीं आती है
करवटें ले ले के सारी रात बीती जाती है
तारे गिन गिन रातको म, अपना मन वहलाऊँ
अजी मुझे . . . . .

झाँक कर खिडकी से देखो चाँदनी मुस्काई है
इस रात की तन्हाई में, याद तुम्हारी आई है
तुमने तो आना नहीं है, व्यर्थ मैं सपने सजाऊँ
अजी मुझे . . . . .

नन तो रहते नहीं चुप क्या है यदि चुप हैं अधर
और सौ सौ दीप जलते, जब उठाती हो नज़र
मूँद कर पलकें तुम्हारा रूप देखूँ मुस्कुराऊँ
अजी मुझे है प्यार तुमसे कैसे यह वतलाऊँ ?

१४. ११. ५६.

अनाहूत आऊँ कैसे ?

तुमरे दरस को प्यासी अँखियाँ, इनकी प्यास बुझाऊँ कैसे ?

कुछ कहना है, कुछ सुनना है
कुछ तुमको धैर्य बँधाना है
भ्रम जो मन में घर है किए
उससे तुम्हें छुडाना है

किन्तु मिले विन तुम्हीं कहो, अपनी वात सुनाऊँ कैसे ?

लगता है कि चिन्तित हो तुम
दोराहे पर आज खड़ी
कुछ निश्चय नहीं कर पाती हो
वड़ी कठिनाई है आन पड़ी

पर जाने विन दिल की वातें, तुमको राह सुझाऊँ कैसे ?

मैं तो आ जाता मेरा क्या
अपनी तो मुझे परवाह नहीं
पर मेरे जाने के वाद तुम्हें
न कोइ कहे, गुमराह कहीं

जान बूझ कर वातें जग की, अपने कदम वढाऊँ कैसे ?

→

सव ही यदि जीते इस मग में
कहाँ जाएगी हार कहो
हार जीत तो रीत है जग की
क्यों चिन्ता फिर बेकार कहो
हार विना नहीं जीत किसी की, यह तुमको समझाऊँ कैसे ?
अनाहूत आऊँ कैसे ?

२८. १२. ५६

याद तुम्हारी आती है

जव भी दिन ढल जाता है और रात की चादर तन जाती है
मुझे याद तुम्हारी आती है
निज विद्युत् दीप जले कमरे में
तुम तो लेटी रहती होगी
और अकेले में भी मेरी
याद तो क्या ही आती होगी
पर तुम विन तममय जव 'दीपा,' कुटिया मेरी रह जाती है
मुझे याद तुम्हारी आती है
जव भी चन्दा मुस्काता है
स्वच्छ और नीले नभ पर
लगता है तुम हो मुस्काई
अपना नीला कोट पहन कर
सच कहता हूँ उस क्षण तो मम दिल की धडकन वढ़ जाती है
मुझे याद तुम्हारी आती है
नीरव जग रहता और मैं भी
लेटा रहता हूँ चुपचाप
सुनता हूँ तो वस मैं केवल
जाती घडियों के पदचाप
कभी साँस तथा दिल की धड़कन भी, जव कानों से टकराती है
मुझे याद तुम्हारी आती है

२९. १२. ५६

रोते किसने देखा है

हँसते तो देखा है जग ने, रोते किसने देखा है ?
द्वन्द भयंकर अन्तर में मम, होते किसने देखा है ?
यह हँसी विवशता की है इसको
कोई कैसे पहचाने ?
असफल प्रणय की पीड़ा को
बेदर्द ज़माना क्या जाने ?
नीर वहा मन ही मन किसने, पीड़ा को धोते देखा है
हँसते तो देखा है जग ने, रोते किसने देखा है ?
चकवे सी मन में आस लिए
चातक सी मन में प्यास लिए
मैं इस जग मैं जीता हूँ पर
विधि का कटुतम हास लिए
पर भार निराशा का मुझको, कहो ढोते किसने देखा है
हँसते तो देखा है जग ने, रोते किसने देखा है ?
केवल पीड़ा पीने के हित
मुझे विधि ने है जन्माया
पर वदले में एक शब्द भी
कहने का अधिकार न पाया

पर मुझे अश्रु का वोलो किसने हार पिरोते देखा है
हँसते तो देखा है जग ने, रोते किसने देखा है ?

जग को तो खुद से मतलव है
क्यों औरों का सोच उसे हो ?
तव फिर मेरे ही दुःख से
व्यर्थ ही क्यों अफसोस उसे हो ?

मुझको ही किसने और किसी के, भावों में खोते देखा है
हंसते तो देखा है जग ने, रोते किसने देखा है ?

६. १. १९५७

पा न सका मैं

मिली उपेक्षा जीवन भर ही, पा न सका मैं प्यार किसी का
न ही रंग भरी इस दुनियाँ में, वना गले हार किसी का

किसी ने भी सच पूछो तो
मुझको पहचाना ही नहीं
घृणा ही मिली अपनों से भी
प्यार है क्या जाना ही नहीं

अपनापन पाता ही कैसे, मैं भी रह कर भार किसी का

मन मन्दिर में विठा किसी को
प्यार के मैने दीप जलाए
अपना कर उस 'दीप' की ज्योति
जाने कितने स्वप्न सजाए

पर मैं शायद सजा न पाया, सपनों का संसार किसी का

यह तो वता विधि अन्यायी
तेरा यह कितना क्रूर विधान ?
जव सारहीन जीवन देना था
क्यों वोल, दिया चिर जीवन दान ?

कर पाता सार्थक निज जीवन, वन कर ही आहार किसी का
मिली उपेक्षा जीवन भर ही, पा न सका मैं प्यार किसी का

६. १. १९५७

मूल्य नहीं है

रे भाग्यहीन ! क्या कभी हुई है पूरी तेरे मन की बात ?
क्यों करता इच्छाएँ फिर तू जिनका कोई मूल्य नहीं है ?
बुरा क्या है यदि मानव हो
तुझमें भी है मान पिपासा
किसे नहीं होती जग में कुछ
कहने सुनने की अभिलाषा ?
पर कोई कान नहीं देता जब, बनता सारा जग निष्णात्
क्यों दुहराता बातें अपनी, जिनका कोई मूल्य नहीं है ?
जब से तूने होश सँभाला
बैठा आशाएँ चुन चुन कर
कुछ नहीं पाया, पाया भी तो
जाने कितनी बातें सुन कर
आज भी अपनी भावनाओं पर यदि पाया तूने आघात
आँसू ही क्यों ढुलकाता फिर, जिनका कोई मूल्य नहीं है ?
सहनशीलता ला अपने में
जीवन में तो दुःख ही दुःख है
तेरा तो वह भाग्य है जिसमें
नहीं विधि ने लिखा सुख है
होते ही रहेंगे तुझ पर तो, बस आए दिन पीड़ापात
व्यर्थ ही क्यों आहें भरता है, जिनका कोई मूल्य नहीं है ?

३. २. १९५७

अमर स्मृति

रहता था जिन आँखों में कभी मेरे प्रति चाव भरा
अब रहता है उन आँखों में अनजाना सा भाव भरा

प्रथम मिलन के शब्द तुम्हारे
कैसे दिल से दूर करुँ
'जो आना न चाहे उसे
क्यों आने को मजबूर करुँ ?'

तव आँखों का वह आमंत्रण था कितना प्रभाव भरा
अब रहता है उन आँखों में अनजाना सा भाव भरा

मेरा हृदय सह न सका जब
जग ने तुम पर कीच उछाला
और मैं दूर हुआ तुमसे तो
लग ही गया सबके मुख ताला

पर तुमने सोचा मेरे मन में तुम प्रति दुर्भाव भरा
इसीलिए है उन आँखों में, अनजाना सा भाव भरा

तुमरे हित तो मेरे मन में
नहीं तनिक भी मैल हीं
छोटी मोटी आँधियों से
उड़ सकता है शैल कहीं ?

→

नहीं कभी कम होगा मेरे दिल में जो सद्भाव भरा
पर रहता है तव आँखों में अनजाना सा भाव भरा

तुम रुठी शायद कि मैंने
तुमसे नाता तोड़ लिया है
इसीलिए तो मैंने तुम तक
आना जाना छोड़ दिया है

तभी तुम्हारे भावों में, अव रहता दुराव भरा
औ रहता है उन आँखों में, अनजाना सा भाव भरा

मुझसे तुमको लेना भी क्या
तय जीवन पथ की और डगर
पर मेरे दिल, वीते दिन की
याद रहेगी अजर अमर

मेरा तुमसे साथ रहा है, यदि नहीं है अव तो क्या
यदि रहता है तव आँखों में, अनजाना सा भाव भरा

१३. २. १९५७

दीप लेती होड़

है पूर्णिमा के चाँद से लो दीप लेती होड़
किया तभी शृंगार उसने आज यह बेजोड़

कानों में कुण्डल सजे हैं
माँग टेढी है निकाली
है चाल में सन्ध्या की मस्ती
गालों में उषा की लाली

निकली है वह आज नीला उत्तरीय ओढ़
है पूर्णिमा के चाँद से लो दीप लेती होड़

चाँदनी ले आज मुख में
चन्द्र – वदनी वह बनी है
रात्रि बन कजली की रेखा
उसके नयनों पर तनी है

फूटती है हास बन कर, तारों की आभा करोड़
है पूर्णिमा के चाँद से लो, दीप लेती होड़

७. ३. १९५७

इल्ज़ाम क्यों है

न पूछा किसीने कि क्यों ग़म पिया है
न पूछा किसीने मुझे क्या हुआ है
अब जो मैं पीता हूँ इल्ज़ाम क्यों है ?
मेरे हाथ में मय का यह जाम क्यों है ?

इल्ज़ाम क्यों है यह दुनियाँ बताए
मुझे मुफ्त़ करती वह बदनाम क्यों है ?

तमन्नाएँ थीं कुछ मैं भी था इन्साँ
जहाँ ने ही मुझको बनाया है हैवाँ
था इन्सान जब तक मैं क्यों कुछ नहीं था
अब होठों पे सबके मेरा नाम क्यों है ?

मेरा नाम क्यों है यह दुनियाँ बताए
मुझे मुफ्त़ करती वह बदनाम क्यों है ?

पहले थी होठों में दिल में भी फ़रहत
मगर अब है उनमें भरा दर्दे – उल्फ़त
सोती थी दुनियाँ तब बेख़बर क्यों
उड़ी बोलो अब नीदं आराम क्यों है ?

आराम क्यों है यह दुनियाँ बताए
मुझे मुफ्त करती वह बदनाम क्यों है

→

न दुनियाँ ही अपनी न हम ही जहाँ के
मंज़िल कहीं वस मुसाफिर यहाँ के
जिए या मरे ऐसी दुनियाँ हमें क्या
सिवा दर्द इसने दिया ही हमें क्या
सुवह लूट ग़म की दी शाम क्यों है
मेरे हाथ में मय का यह जाम क्यों है ?

२९. ४. ५७

वह धनी कलम का

जग को मार्ग दिखाने वाला भूल गया ख़ुद राहें अपनी
त्याग का पाठ पढ़ाने वाला, छोड़ सका न चाहें अपनी

जग की पीड़ा को छन्दों में
जो सजा सजा पत्थर पिघलाता
निज ओज भरी वाणी से जो
निर्बल में शक्ति सरसता

निर्बल अनुभव करके मन में, दबा रहा ख़ुद आहें अपनी
जग को मार्ग दिखाने वाला, भूल गया ख़ुद राहें अपनी

स्वाभिमान ही भूषण जिसका
झुकना तो जाना ही नहीं
छोड़ प्रेरणा और किसी का
आभार कभी माना ही नहीं

व्यथा भार से झुका रहा है आज वही निगाहें अपनी
जग को मार्ग दिखाने वाला, भूल गया ख़ुद राहें अपनी

जो उड़ता निर्द्वन्द गगन में
करता तारों से अठखेली
जो उतर हृदय में, सागर तल में
सदा मनाता है रंगरेली

→

आज निराशा के सागर में, पा न सका ख़ुद थाहें अपनी
जग को मार्ग दिखाने वाला, भूल गया ख़ुद राहें अपनी

शब्द शब्द में आग छुपा जो
करता व्यङ्गों की वौछार
सम्पूर्ण जगत से भिड़ जाने को
जो सदा अकेला ही तैयार

वह धनी कलम का आज विरत हो, खींच रहा है वाहें अपनी
जग को मार्ग दिखाने वाला, भूल गया ख़ुद राहें अपनी

३. ५. १९५७

जीने योग्य नहीं है

जीवन से तो बैर नहीं पर जग ही जीने योग्य नहीं है

एक तो है अपनी ही पीड़ा
उस पर पीड़ित जन की आहें
एक तो अपना भाग्य ही हावी
उस पर जग की क्रूर निगाहें

दुःख से तो इन्कार नहीं, पर यह उपेक्षा भोग्य नहीं है
जीवन से तो बैर नहीं पर, जग ही जीने योग्य नहीं है

ठोकर है पग पग पर जिसमें
और करुणा का नाम नहीं है
हरेक दृष्टि में बेगानापन
अपनेपन का नाम नहीं है

मिले हलाहल पर यह कटुता, विल्कुल पीने योग्य नहीं है
जीवन से तो बैर नहीं पर जग ही जीने योग्य नहीं है

मई १७, १९५७

क्या मंज़िल तक पहुँचाते तुम

निर्देशन जव तुम्हें चाहिए, क्या मुझको मार्ग दिखाते तुम?
भूल भरी ख़ुद राह तुम्हारी, क्या मंज़िल तक पहुँचाते तुम?

जो अपना ही पथ भूल गया
झूठे आदर्शों में पड़कर
वह मार्ग की वाधाओं से
क्या भला जूझता आगे वढकर

लौट तुरत ही आते तुम; क्या मंज़िल तक पहुँचाते तुम?

जो खुद ही इतना निर्बल है
सुन न सका मेरे गीतों को
साथ ही देकर क्या सह लेता
दुनियाँ के आखर तीतों का

कर निज तुरत छुडाते तुम; क्या मंज़िल तक पहुँचाते तुम?

कितनी भारी भूल थी मेरी
रखना तुमसे जोत की आशा
पा ही सकता था मैं तुमसे
और भला क्या, छोड़ निराशा

वही मुझे पकड़ाते भी तुम; क्या मंज़िल तक पहुँचाते तुम?

अच्छा है यह भी जो तुमने
मुझसे किनारा काट लिया
अपना जीवन साथी झूठे
आदर्शों को छाँट लिया

यदि तुम्हीं हो मंज़िल कहता, मुझे तुरत ही ठुकराते तुम
क्या मंज़िल तक पहुँचाते तुम !

मई १७, १९५७

स्वप्न सा लगने लगा है

जिस तरह होते नहीं कभी स्वप्न पूरे
हैं रह गए हर वार ही अरमाँ अधूरे
फिर कल की कैसे मान लूँ सच हर वार तो तुमने ठगा है
ज़िन्दगी भी तव कठिन व्यवहार से स्वप्न सा लगने लगा है

आज तक मुझको किसी भी कोण में संसार के
मिला नहीं जो वोलता दो एक भी शब्द प्यार के
दिया तुमने साथ तो लगा, कोई अपना भी सगा है

मन या वचन के भार से हो साथ तो तुमने दिया
पर न जाने किस लिए संग तुमने एक माध्यम लिया
डर था मुझसे या कहीं यह जग न कह दे विपथगा है
ज़िन्दगी भी तव कठिन व्यवहार से
स्वप्न सा लगने लगा है

२९. ८. ५७

साथी विन जीवन सूना

प्रहर एक क्या बैठ गई तुम आकर मेरे पास सखी
साथी विन जीवन सूना है अव होता आभास सखी

साथ तुम्हारा कितना मधुमय
मधुमय कितने श्यामल लोचन
जाने तुम में क्या जादू था
भूल गया मैं निज अपनापन

डूव गया क्षण भर में प्रहर, देख मधुर तव हास सखी
साथी विन जीवन सूना है, अव होता आभास सखी

जान गया हूँ शीतल कितनी
सावन की होती फुहारें
कैसी मन को हरने वाली
लाती है संगीत वहारें

अनजाने ही जगा गई तुम, सोया मम मधुमास सखी
साथी विन जीवन सूना है, अव होता आभास सखी

जगा गई नूतन अनुभूति
तुम लेकर मादक अंगडाई
मेरे इस नीरस जीवन में
तुमने रस की चाह जगाई

तुम विन होती जाती तीव्रतर अव उस रस की प्यास सखी
साथी विन जीवन सूना है, अव होता आभास सखी
कभी नहीं सोचा था मैंने
एकाकी जीवन खोता था
तुमसे मिलने से पहले मैं
निज स्वर्णिम यौवन खोता था
अव दिल खोलकर पाया सव कुछ होता यह अहसास सखी
साथी विन जीवन सूना है, अव होता आभास सखी

३. ६. ५७

बोलो क्या उपहार तुम्हें दूँ ?

नहीं चाहता विल्कुल, नश्वर, मोतियों हार तुम्हें दूँ
बोलो........

रखा सँजो कर था मैंने कुछ
दूर प्यार के तूफानों से
वडे यत्न से वचा वचा कर
प्रवल यौवन उफानों से

हर ले गईं तुम, वह दिल मेरा, कैसे दूजी वार तुम्हें दूँ
बोलो........

यौवन तो विल्कुल अंधा है
तिस पर भी लहरों सा चंचल
जाने कव कोई राह पकड़कर
झटक चले साथी का अंचल

कैसे वोलो, बैठ किनारे, पीड़ामय मँझधार तुम्हें दूँ
वोलो........

यौवन नश्वर जीवन नश्वर
नहीं तनिक अधिकार जरा पर
सव नश्वर नहीं योग्य तुम्हारे
कुछ भी तो सम्पूर्ण धरा पर

→

अमर एक है तुम चाहो तो वही अनूठा प्यार तुम्हें दूँ
वोलो........

मृणाल की नाईं वह कोमल कर
मैंने पकडे तुम शरमाईं
कर कसे चूडियाँ टूट गईं
और शून्य तुम्हारी हुई कलाई

तुम कहो चूडियाँ पहनाकर जीवन का अधिकार तुम्हें दूँ
वोलो क्या उपहार तुम्हें दूँ ?

१८. ६. १९५७

विदा दो

मुस्कुरा कर आज विदा दो
पलकों में उमड़ते ये आँसू, प्रिये पीकर स्मित छलका दो,
मुस्कुरा कर आज विदा दो.
आज विदा की भीगी बेला
औ वियोग का यह कटुतम क्षण
सरस बना दो मधु सम कविते
करके पुनर्मिलन को अर्पण
आखिर इतनी आतुरता क्यों, मम हेतु, यह तो बतला दो
मुस्कुरा कर आज विदा दो.
मेरे मन में आज उठी है
प्रिये ! विकट विरह की ज्वाला
आहुति पा भभक उठेगी
तव रुदन से ओ मधुवाला !
मधु अधरों पर हास सजा कर, मेरे मन की आग बुझा दो
मुस्कुरा कर आज विदा दो.
तुम्हारी ये आँसू की लड़ियाँ
प्रिये ! बनेंगी पग जंजीर
कण्टक वन मम राह बिछेंगी
और उठेंगी मन में पीर
जीवन पथ अवरोध हैं आँसू, हास सुमन मे मार्ग सजा दो
मुस्कुरा कर आज विदा दो

२१. ९. १९५७

लज्जा की दीवार

दे गई अपनों ही के सम्मुख, अपने पन को हार
हम दोनों के वीच सखी यह लज्जा की दीवार

खिन्न हुआ है हृदय जरा सा, मैं रूठा थोडे ही हूँ
नि: सार न समझो वातें मेरी, मैं झूठा थोडे ही हूँ
आज लगा कि नहीं तनिक मम आग्रह में अधिकार
हम दोनो के वीच खडी है, लज्जा की दीवार

गाता होगा हृदय तुम्हारा, फूट न पाए स्वर अधरों से
या नहीं पहुँचे मुझ तक शायद, उड़कर भाराक्रान्त परों से
या उड़ ऊँचे भी नहीं शायद, कर पाए वह पार
हम दोनो के वीच खड़ी यह लज्जा की दीवार

तुम तक आने को शत् शत् मन में मम अरमान उठे
पहुँच न पाया मंज़िल कोई, सारे राहों वीच लुटे
आज सँजोए सपने सारे, देख हुये वेज़ार
हम दोनों के बीच सखी यह लज्जा की दीवार

मचली होगी जाने कव कव ,तुम में होने लोन जवानी
मन में लेती रही हिलोरें, उसकी वह लहरें तूफ़ानी
नहीं मिली जव राह कोई भी, हुई शिथिल वह धार
हम दोनों के वीच खड़ी थी, लज्जा की दीवार

→

जो हम रहते चिर अनजाने, रहता नीरस ही जीवन
और न कुछ कहता मैं तुमसे, यदि न होता अपनापन
आई कैसे वतलाओ तो, करके आखिर आँखे चार
हम दोनों के वीच सखी यह लज्जा की दीवार

कव कव आती ऐसी बेला कव कव आते ये अवसर
फिर वोलो कृपणता कैसी, गा देने में दो मीठे स्वर
कव तक वोलो वनी रहेगी अपनेपन पर भार
हम दोनों के वीच सखी यह लज्जा की दीवार

३२ अक्तूवर १९५७

नहीं मुझसे नेह है

जि़न्दगी की इक सुहानी शाम को
तुम मिलीं और हृदय मेरा खो गया
राह अपनी भूल तव राहें चला
तुम हँसी और मैं तुम्हारा हो गया

तव नयन के उस परोक्ष आह्वान से
मैं खिचा और खिचता ही गया
व्यवहार तव इतना मधुर था कि प्रिये !
मैं झुका और झुकता ही गया

जो न पाया आज तक था निज जनों से
वही तुमसे पा गया था प्यार मैं
हो उठी थी छन्दमय यह ज़िन्दगी
पा रहा था स्वप्न निज साकार मैं

डूब गया इतना तुम्हारे प्यार में कि
साथ तव रहने लगा सन्ध्या सबेरे
स्वप्न तक में छूटता न साथ था
रहती मुझे थी तव मनोहर छवि घेरे,

सहन नहीं होता कभी संसार को
मझधार कोई छोड़कर कर ले किनारा

→

मैं डूबता था प्यार के मझधार में
जल उठा देख फिर भी जगत सारा
निष्फल कभी भी यत्न है होते नहीं
मिल ही जाता फल कभी तो एक दिन
सतत् जग के भी मलिन प्रयास ने
कर दिया कुछ काल हित प्रणय मलिन
तज दिया आना तुम्हारे द्वार मैंने
सोच कि जग और न उगले हलाहल
सुन न पाऊँ मैं तुम्हारी भी बुराई
रहे उसको ही जलाती वह गरल
तुमने पर शायद मुझे कुछ और सोचा
और तुम मुझसे कतराने लगी
राह में सहसा यदि मिल भी गई
अनजान सी आँखे चुराने लगी
जब दुःखद अति तब हुआ व्यवहार तो
कुछ रोष में और कुछ विरत होकर
कर दी अर्पण राह में तुम जब मिली
निज प्रणय की 'अमर स्मृति' संजोकर
पट गया फिर वह मलिनता का गढ़ा
पृथक राहें मिली फिर से एक बार
कोरे प्रणय के पृष्ठ अब भरते गए
बज उठे मन बीन के फिर सुप्त तार

तव कथन पर विवश हो मैं गा उठा
किया मैंने और ज्यादा नहीं, नहीं
विवश हो कर गा उठी अनजान भी पर
अन्त तक भी तुम नहीं करती रही

ठुकराई मेरी जव कि तुमने माँग छोटी
अव भी वोलो क्या कहीं सन्देह है
दे न पाओगी कभी तन मन प्रिये तुम
क्योंकि तुमको नहीं मुझसे नेह है

८. ११. १९५७

बीते दिन की बात

धूप छाँव सी एक एक कर लहरों सी हर रात
मानस में मेरे टकराती बीते दिन की बात

क्षणिक, चमक कर चपला सी, सुख की घडियाँ बीत गईं
अनन्त अमावस सम तममय, करके जीवन प्रीत गई
अंगडाई ले आई यद्यपि, आज नई प्रभात
मानस में मेरे टकराती, बीते दिन की बात

वह भी दिन थे जब मैं सुन्दर स्वप्न सजाया करता था
अरमाँ की डोली ले उनके द्वारे जाया करता था
सपने रहते काश ! स्वप्न ही, न करती आघात
मानस में मेरे टकराकर, बीते दिन की बात

सूनी ही लौटी वह डोली, स्वप्न अधूरे रह गए
आशा के मोती आँखों के, आँसू बन कर बह गए
प्यार के बदले दी उनकी यह आँसू की सौगात
मानस में मेरे टकराती, बीते दिन की बात

भूल गया हूँ पहली मंजिल, मैं नूतन राहें अपना कर
प्यार भरे गीतों में डूबा, अब दिल की आहें बिसरा कर
भूले सपने जिसको समझूँ, आकर वही हठात्
मानस में मेरे टकराती, बीते दिन की बात

दिसम्बर ६, १९५७

दिया जल चुका है

अभी मेरे यौवन की चढ़ती दुपहरी
शैशव कभी का मेरा ढल चुका है
जीवन की सन्ध्या का भय न दिखाओ
हृदय में प्रणय का दिया जल चुका है

तुम दिल को मेरे आघात दोगे ?
मुझे आँसुओं की बरसात दोगे ?
ठोकर कई खा चुका है हृदय मम
श्रोत अश्रुओं का अभी तो रुका है
सावन और भादों में अपने नयन की
सिसक कर के मेरा जहाँ गल चुका है
जीवन की सन्ध्या का भय न दिखाओ
हृदय में प्रणय का दिया जल चुका है

'वडी ही कठिन प्यार की यह डगर है
चलते ही जाना आठों प्रहर है'
क्यों भय दिखाते हर बार मुझको
राही प्रणय का सहज क्या झुका है ?
जी भर के राहों में काँटे विछा दो
चेतन ये राहें वहुत चल चुका है
जीवन की सन्ध्या का भय न दिखाओ
हृदय में प्रणय का दिया जल चुका है

→

कर दोगे विचलित मुझे तुम डरा कर
या वाक् – वन्धन में मुझको फँसा कर
गुमराह करने की चालें तुम्हारी
चिन्तन तुम्हारा वहुत बेतुका है
चतुर हो गया हूँ, मुझे क्या छलोगे
पहले ही कोई मुझे छल चुका है
जीवन की सन्ध्या का भय न दिखाओ
हृदय में प्रणय का दिया जल चुका है

दिसम्वर २८, १९५७

कोई नहीं जग में

जिनके पहले ही लाखों हैं उनको ही यह जग अपनाता
कोई नहीं जग में जो मेरे, दिल का दर्द समझ पाता

वाधाओं से भरा यह जीवन, पथ लम्वा और मैं एकाकी
साथी आए चले गए, रह गया दिल का दर्द ही वाकी
कैसे वीतेगा यह जीवन, सोच मैं मन ही मन अकुलाता
कोई नहीं जग में जो मेरे, दिलका दर्द समझ पाता

अव तक जाने कितनों ही को, मै हमदर्द वना बैठा
कुछ कहने पर और कुछ ख़ुद ही दिलका दर्द सुना बैठा
अव तो अपनी 'कविता' को ही, अपनी दिल की वात वताता
कोई नहीं जग में जो मेरे दिल का दर्द समझ पाता

चिन्ता आखिर कैसी तुमको, पीडा से परिचय ही क्या है
काया गलती जाती नित् नित्, अभी तुम्हारा वय ही क्या है?
हँसने खाने के तव दिन हैं, हर कोई मुझको समझाता
कोई नहीं जग में जो मेरे दिल का दर्द समझ पाता

कहने वाले तो लाखों हैं, मेरी सुनने वाला कौन ?
दुनियाँ अपनी कहती जाती, सुन लेता हूँ रहकर मौन
'चेतन' वदला कोई कहता, मैं निज भावों में खो जाता
कोई नहीं जग में जो मेरे, दिल का दर्द समझ पाता

जनवरी ६, १९५८

मझधार थोड़े डूबना है

दूर रहकर तुम वहाओगी प्रिये ! आँसू की धारा
मझधार थोडे डूबना है काट कर तुमसे किनारा

तुम निकालो नहीं चाहे अपने दिल से सर्द आहें
छोड़ दो चाहे विछाना हो निराश पथ पर निगाहें
हिचकियाँ आ आ कहेंगी अव तक नहीं तुमने विसारा
मझधार थोडे डूबना है, .काट कर तुमसे किनारा

तोड़ दूँ कैसे भला मैं, है दिया जो वन्ध तुमने ?
अन्याय वोलो क्यों किया, दे लाज की सौगन्ध तुमने ?
जान कर भी टेक मेरी, क्यों कहो सौगन्ध डारा ?
मझधार थौडे डूबना है काट कर तुमसे किनारा

आश्वासन मेरा प्रिये तुम, व्रह्म का लेखा समझ लो
दिए मेरे वचन को, सिन्दूर की रेखा समझ लो
मोड़ लूँगा मुख मैं तुमसे, कैसे भला तुमने विचारा ?
मझधार थोडे डूबना है, काट कर तुमसे किनारा

१६. १. १९५८

भुला शायद ही पाओ

तुम विरह की आग में मुझको कितना ही जलाओ
याद आऊँ या न आऊँ पर भुला शायद ही पाओ

प्यार मेरी ज़िन्दगी में इक बड़ा तूफान लाया
एक पल मुझको हँसाकर उम्र भर तुमने रुलाया
हास दो अथवा नहीं पर, अब रुला शायद ही पाओ
याद आऊँ या न आऊँ पर भुला शायद ही फाओ

तव हृदय में आज रहती, मेरे लिए घृणा अपार
जिसको कभी माना था खु.द ही, ज़िन्दगी का कर्णधार
उर वसाओ या नहीं पर, अब हटा शायद ही पाओ
याद आऊँ या न आऊँ पर भुला शायद ही पाओ

एक सन्ध्या को तो दीपक, कक्ष में जल जल उठेगा
देख कर प्रीति शलभ की, हो हृदय बेकल उठेगा
नीर ढुलकें या नहीं पर छुपा शायद ही पाओ
याद आऊँ या न आऊँ, तुम भुला शायद ही पाओ

२४. १. १९५८

जगत चल रहा है

सरिता के जल सा नया पथ पकड़ता, कुपन्थ नूतन
जगत चल रहा है
तिल-तिल है वाती स्वयं को जलाती
तैल उस जलन में है खु.द को मिटाती
मगर सत्य से जग दूर सर्वथा है
असत् की ही कहता हमेशा कथा है
दीपित् वाती को लख टिमटिमाते, कहता है देखो
दिया जल रहा है
सरिता के जल सा नया पथ पकड़ता, कुपन्थ नूतन
जगत चल रहा है
पल वीत जाता क्षणों में वदल कर
क्षण वन घड़ी जाता प्रहरों में ढलकर
दिवस मास और वर्ष नूतन वनाता
मानव अपनी वर्ष गाँठे मनाता
नहीं देख पाता है जीवन को ढलते, कहता है देखो
दिवस ढल रहा है
सरिता के जल सा नया पथ पकड़ता, कुपन्थ नूतन
जगत चल रहा है

३१. १. १९५८

यह न बता सकूँगी मैं

उर में तड़प उठे अरमाँ, मुख पर विखर गई अलकें
नयनों में रस उमड़ पड़ा, विह्वल हो मुँद गई पलकें
अधरों पर जा पड़े अधर, उष्ण स्वास रुक रुक आई
कर पाश कठिन होता ही गया, दव गई वक्ष की गोलाई

कव; कैसे ? न पूछो प्रियवर यह न वता सकूँगी मैं
यह प्यास बढ़ती जाती नित् नित्, पी पी नहीं थकूँगी मैं

तोड़े नहीं टूटा मान तुम्हारा, खोए खोए से तुम पथ पर
उर को दे भारीपन मेरे, चल पड़ने को हुए तत्पर
मैं ही झुकी, दम जो घुटता था, रुठ गया था मेरा जीवन
स्वर जो भीगे जड़ दी तुमने लौट मेरे अधरों पर चुम्वन
दण्ड था या वरदान न पूछो, यह न वता सकूँगी मैं
यह प्यास वढ़ती जाती नित् नित् पी पी नहीं थकूँगी मैं

जाने कव तक एक रहे, युग युग के प्यासे दो तन
अधर रहे करते रसपान, एक रही दिल की धड़कन
पी अधरों की हाला मधुमय, रक्तिम हुए नयन कजरारे
रात प्रणय में डूब गई, मुस्कुरा उठे चन्दा तारे
कव हुआ कसा वन्धन ढीला, यह न वता सकूँगी मैं
यह प्यास वढती जाती नित् नित् पी पी नहीं थकूँगी मैं

→

होश हुआ तो सर्द उसासें, इच्छा कर भी रोक न पाई
आँख खुली तो देखा तुम थे, नैनन् लिए हुए कुटिलाई
गड़ गई लाज के मारे मैं, कुछ भी चाहे लाख कहो
मन में बस इतना कह पाई, 'चेतन हटो बडे वो हो'
कैसे बीती रात न पूछो, यह न वता सकूँगी मैं
यह प्यास वढती जाती नित् नित् पी पी नहीं थकूँगी मैं

७. २. १९५८

प्यासा हूँ, रीता हूँ

नई नई सी तुम लगती हो, चल पड़ी प्यार की राहों में
खो जाने को मचल उठा है, तव हृदय किसी की वाहों में
तभी, कभी तुम छत् पर जाती, खड़ी कभी रहती निज द्वारे
मुझे देखने को मुड़ मुड़ हैं, जाते व्याकुल नैन तुम्हारे
पा जाओगी और कई तुम, राह प्रीत के नूतन राही
उनको वाले तुम अपनाकर, पूर्ण करो इच्छा मन चाही
अर्पण हों तुम पर कितने ही, जव कोमल हिए के स्पन्दन
क्यों मुझको दे कर दिल अपना, आमन्त्रित करती हो पीड़न
जल जल वैठा प्रीति शलभ वन, मैं हर रूप को दीप समझकर
हर हास वसाया जो उर में, ढुलक गया आँसू में ढलकर
दे न सकूँगा कुछ भी तुमको, मैं ख़ुद को ही दे बैठा हूँ
वदले जिसके दी प्रीतम की, पीड़ा उर में ले बैठा हूँ
सो मुझको तो दिल देने में, नहीं है वाले ! सार कोई
पीड़ा को सहलाने का भी, ले बैठा अधिकार कोई

मैं हूँ नभ का सूखा वादल
जल की रखना आस नहीं
मैं ख़ुद प्यासा हूँ, रीता हूँ
बुझा सकूँगा प्यास नहीं

१३. १. १९५८

प्यार समझ बैठा हूँ

पीड़ा का आधार किसे समझूँ मैं,
उनको तो मैं प्यार समझ बैठा हूँ
दिल लेकर दी घृणा की सौगात को,
जीवन का उपहार समझ बैठा हूँ

वह लाख किनारा काटें मेरी
छोड़ प्रीति नैया मझधार
डुवो चलें चाहे मेरा क्या
नैया उनकी उनका प्यार

मझधार वनें या तट, पर मैं तो उनको,
नैया की पतवार समझ बैठा हूँ
पीड़ा का आधार किसे समझूँ मैं,
उनको तो मैं प्यार समझ बैठा हूँ

मैंने तो अपनाया उनको
प्रीत पंथ का जान बटोही
सपने मैं भी प्यार न पाया
वो निकले इतने निर्मोही

फेर चलें राहें या संग ही मैं उनको,
सपनों का संसार समझ बैठा हूँ
पीड़ा का आधार किसे समझूँ मैं,
उनको तो मैं प्यार समझ बैठा हूँ

मैं एकाकी पथ है लम्बा
पग उठते हैं ढीले ढीले
आँसू पी सूखो पलकें पर
उर के कोरे तो गीले गीले

लाख पराए वो वन जाएँ पर मैं तो,
अपना ही हर वार समझ बैठा हूँ
पीड़ा का आधार किसे समझूँ मैं,
उनको तो मैं प्यार समझ बैठा हूँ

मई १६, १९५८

प्रेरणा पाषाण है

मैं शलभ हूँ जल रहा हूँ दीप पर अनजान है
मैं कवि हूँ किन्तु मेरी प्रेरणा पाषाण है
रूप देखे कितने ही पर, उसको ही दिल में बसाया
यह तो मेरी ही सुजनता, वह मधुर है यह बताया
मैंने बखाना रूप क्या, उसको हुआ अभिमान है
मैं कवि हूँ किन्तु मेरी प्रेरणा पाषाण है
नैन उलझे तो उसी में, नैनों पर अधिकार क्या
जान कर भी दीप है, उसको शलभ से प्यार क्या
वह अनल है प्यार की, उसको नहीं पहचान है
मैं कवि हूँ किन्तु मेरी प्रेरणा पाषाण है
हरण करके हृदय मेरा, हो उठी भयभीत वो
सोच कि 'यह दिल कहीं, माँग बैठा प्रीत तो ?'
नहीं चाहता किन्तु मेरा, प्यार प्रतिदान है
मैं कवि हूँ किन्तु मेरी प्रेरणा पाषाण है
झुक न पाया मौन रहकर इतना कि मैं टूट जाता
याचना होती नहीं फिर कैसे उसका प्यार पाता
मान उसमें रूप का तो मुझ में स्वाभिमान है
मैं कवि हूँ किन्तु मेरी प्रेरणा पाषाण है

१७. ८. १९५८

चतुर खिलाड़ी

चतुर खिलाड़ी कह जाना है, यों परदेसी अनजानी हो
लाख अजाना मैं तुमरे हित, पर तुम जानी पहचानी हो

एक या दो को आई थी तुम, चौथे को थी चली गईं
पर उर मेरे कौतूहल की एक खिलाती कली गईं
छवि तुम्हारी सहसा ही औ स्वयं हुई उर में अंकित
वे दो चंचल नैन तिहारे गहरे पैठ गए नित् नित्
उर की वढ़ती धड़कन कहती क़ातिल हो तुम रूमानी हो
लाख अजाना मैं तुमरे हित पर तुम जानी पहचानी हो

सहसा फिर वाले तुमने, सन्ध्या के झुटपुट में आज
छवि मनोहर दिखलाई तो दब ही गई उठती आवाज़
स्थिर नैन हुए मेरे तुम चितवन से करती थी चोट
मन्त्र मुग्ध मैं देख रहा था तुमको खड़ी स्तम्भ की ओट
मुस्कान तुम्हारी खाती है चुगली की तुम सैलानी हो
लाख अजाना मैं तुमरे हित, पर तुम जानी पहचानी हो

द्वार खड़ा मैं वना अनमना, लखता था तव आना जाना
पास खड़ी मम पढ़ना कुछ कुछ, फिर मन ही मन दुहराना

→

फिर सहसा ही चपला सी हो चपल थिरक थिरक जाना
मुड़ मुड़ कर दे मौन ईशारा, मधुर मधुर मुस्काना
भाव वनाती जैसे मन में होती खींचा तानी हो
लाख अजाना मैं तुमरे हित पर तुम जानी पहचानी हो

लगी खेलने कस कर आँचल, कटि को क्षीण वनाती
उभरे कुच, नितम्व प्रसारित, हुई चाल मदमाती
बातें सुन सुन लजा गईं तुम, हुए तव ताम्र कपोल
सार्थक 'सविते' नाम हुआ तव उतरा धरा ख़गोल
रूप सुधा मैं पान करुँ तुम थक थक पीती पानी हो
लाख अजाना मैं तुमरे हित, पर तुम जानी पहचानी हो

भाग्य रहा विपरीत तुम्हारे, खूव ही खेली लेकर लघु तन
मात्र तुम्हारी हार नहीं है, हार गया हूँ मैं भी निज मन
दे क्षण भर को खूव उजारा, चली जाओगी तुम सविता
याद तुम्हारी रह जायेगी अनगढ़ कवि की यह कविता
मूक प्रणय की मेरी तुम भी, स्वप्निल अजव कहानी हो
लाख अजाना मैं तुमरे हित पर तुम जानी पहचानी हो

१५. ११ १९५७

वहता क्यों जा रहा हूँ

वरवस समा रहा है क्यों कोई निगाह में
वहता क्यों जा रहा हूँ मैं सरिता प्रवाह में ?

जाने कितने आज तलक हमसफर मिले
कोई मुस्कुरा लिया कोई निगाह भर मिले
उतरा न कोई पर मेरे उर अथाह में
वहता क्यों जा रहा हूँ मैं सरिता प्रवाह में ?

उद्‌गम है जाने कौन सा, सागर वनेगा कौन ?
रो रो के रीता चोट खा, गागर वनेगा कौन ?
ठोकर ही पाई दीप विन जीवन की राह में
वहता क्यों जा रहा हूँ मैं सरिता प्रवाह में ?

यौवन के मद में चूर है वह तीव्र है गति
वढ़ जायगी वह कूल कगारों को तोड़ती
उसे तनिक भी दुःख न होगा हृदय दाह में
वहता क्यों जा रहा हूँ मैं सरिता प्रवाह में ?

सम्भव है क्या कि प्यार का न कारवाँ लुटे
सम्भव है क्या कि दग्ध कोई शलभ जी उठे ?
डूवा है फिर क्यों दिल मेरा किसी की चाह में
वहता क्यों जा रहा हूँ मैं सरिता प्रवाह में ?

१६. ११. १६५८

क्यों हुई पहचान तुमसे

ठीक ही था जब तलक था मैं 'सरि' अनजान तुमसे
सोचता हूँ व्यर्थ ही हा ! क्यों हुई पहचान तुमसे

क्षणिक मिलन में आज के ही पास इतने आ गया हूँ
इक अनूठा अप्रत्याशित अपनत्व तुम में पा गया हूँ
कि विरह की कल्पना भी कर रही बेचैन मुझको
पलकों में ही काटनी यह पड़ गई है रैन मुझको

क्यों न जाने इस कदर है हो गई रुझान तुमसे
सोचता हूँ व्यर्थ ही हा ! क्यों हुई पहचान तुमसे

देख कर तव लोचनों में भावनाओं की लहर
शून्य में जो तैरती हैं प्रायः आठों ही प्रहर
साम्य पाकर प्रकृति में, मैं तुम्हारे पास आया
हर तरह से तुमको निज भावों के अनुरूप पाया

दे दिया दिल बिना माँगे प्यार का प्रतिदान तुमसे
सोचता हूँ व्यर्थ ही हा ! क्यों हुई पहचान तुमसे

स्पष्टवादिन हो सभी कुछ तुम में है लुभावना
पर न जाने क्यों है तुम में हीनता की भावना
यह न भूलो तुम सरि कि है जगत विशाल ये
जाने तुम पर कब कोई निज हृदय उछाल दे

→

बँध गए अनजान में, मेरे ही मन प्राण तुमसे
सोचता हूँ व्यर्थ ही हा, क्यों हुई पहचान तुमसे

कल चली जाओगी शायद लौट अपने देश को तुम
क्या समझ पाओगी मेरे दिल में लगते ठेस को तुम
और कदाचित भूल जाओ, व्यस्त होकर इस मिलन को
भावनाओं में वहक मैं, कह गया जो उस कथन को

पर सँजो कर मैं रखूँगा, जो मिली मुस्कान तुमसे
सोचता हूँ व्यर्थ ही हा ! क्यों हुई पहचान तुमसे

शुभ तुम्हारा हो गमन, मार्ग तव प्रशस्त हो
राह आती विघ्न की, हर प्राचीर ध्वस्त हो
चिर रहे यौवन तुम्हारा, भावना अमर रहे
उफ़ान लेता नित हृदय में प्रीत का निर्झर रहे

अब मिलन शायद कभी हो, मन के ओ मेहमान तुमसे
सोचता हूँ व्यर्थ ही हा ! क्यों हुई पहचान तुमसे

१६. ११. १९५८

कुछ न बोलो

कुछ न वोलो आज मेरा उर अशान्त है

शैल – गुह से अवतरित हो
ज्यों है सरिता छलछलाती
वह भी सहसा उर बसी मम
नाम निज सार्थक वनाती

याद उसकी कर रही, अव हिए उद्भ्रान्त है
कुछ न बोलो आज मेरा उर अशान्त है

लग गई है राह अपनी
उर का मेरे छू किनारा
आएगी क्यों भूल कर भी
लौट कर के वह दुबारा

वहा लाई भावों में, मुझको जहाँ एकान्त है
कुछ न वोलो आज मेरा उर अशान्त है

राहें नित् नूतन पकड़ कर
मैं वहकता जा रहा हूँ
प्यार तो एक स्वप्न सा है
पीर ही बस पा रहा हूँ

→

जो कि पैठी गहन मेरे उर नितान्त है
कुछ न वोलो आज मेरा उर अशान्त है

यादों के वादल घुमड़ते
पीर वढ़ती जा रही है
लोचनों की राह मम
सरिता उमड़ती जा रही है

कव तलक जीवन सँभालूँ, हर घड़ी दु:खान्त है
कुछ न वोलो आज मेरा उर अशान्त है

२१. ११. ६१५८

मुँदी कली

सुरभित हुई हं आज मम उर की गली गली
है पुष्प बन कर खिल उठी कल की मूँदी कली
हो उठा है आज उसका अंग अंग गतिमान
छोड़ शैशव चढ़ रही, यौवन का प्रथम सोपान
देख तन का वह गठन, मचती हृदय में खलबली
है पुष्प बन कर खिल उठी, कल की मुँदी कली
आज मादक नैन उसके औ मधुर मुस्कान है
वर्ण जैसे नील पंकज, वक्ष में उठान है
चूमती नितम्ब को वह है लिए अलकावली
है पुष्प बन कर खिल उठी कल की मुँदी कली
हर नयन आतुर उसी के रूप मधु के पान को
श्रुति पट व्याकुल उसी के कोकिला से गान को
आह ले बिछते युवा दिल राह जिस झूमती चली
है पुष्प बन कर खिल उठी, कल की मुँदी कली
देख उषा कमल के लव, थिरकती मुस्कान है
पर न जाने क्यों दिवस यह नील पंकज म्लान है
ले नींद मेरी खिलती होगी, रात ज्यों जाती ढली
है पुष्प बन कर खिल उठी, कल की मुँदी कलो

२२. ११. १९५८

मैं बहुत पछताया

तुमसे कर के प्यार सरिता मैं वहुत पछताया
तुम पर हृदय हार सरिता मैं वहुत पछताया

अन्तिम क्षणों में आ निकट व्यर्थ पीड़ा को जगाया
दिल दिया, कविता भी दी, पर विदाई दे न पाया
कौन जाने तुमको भी मम याद आई कि नहीं
राह में मम हो अधीर, पलकें विछाई या नहीं
तुम पर लिख बेकार कविता, मैं वहुत पछताया
तुम पर हृदय हार सरिता, मैं वहुत पछताया

जगत कहता आज है कवि का सत्यानाश हो
भूल सरिते मैं करु ँ किन्तु तव परिहास हो
सुन लूँ मैं अगर कहें एक दो, कितना सहूँ
मूर्खता मैंने ही की है, फिर किसी को क्या कहूँ
करके आँखे चार सरिता, मैं वहुत पछताया
तुम पर हृदय हार सरिता, मैं वहुत पछताया

प्यार वढ़ता देख तुम में धरा शंकित हो उठी है
मानव हूँ, अन्तर की पीडित, भावनाएँ रो उठी हैं

जा के सरिता तुम में ही मम जिन्दगी उलझी कहीं
कितना ही मैंने सुझाया, किन्तु वह सुलझी नहीं
वना जीवन भार सरिता, मैं वहुत पछताया
तुम पर हृदय हार सरिता, मैं वहुत पछताया

मैं दीवाना 'दीप' पर, शलभ वन कर जल उठा था
'कविता' वनी थी ज़िन्दगी शोक सारा ढल चुका था
सामने मेरे अचानक, आ गईं, तुम मुस्कुराकर
दूर सवसे ले गईं, साथ में मुझको वहाकर

छेड़ मन के तार सरिता, मैं वहुत पछताया
तुम पर हृदय हार सरिता, मैं वहुत पछताया

२२. ११. १६५८

अधरपराई

'मधुर' 'सुषमा' 'माधुरी' भी, छू न पाई हृदय मेरा
'कुसुम' सुरभित कर न पाई, दूर 'उषा' भी अँधेरा
'राज' नहीं कर राज पाई, 'सन्तोष' न सन्तोष दे
'माया' अजाने कर गई तुम, आज उर मेरे वसेरा

वाम तुमरे 'आश रश्मि' है मिलन की आस देती
मातङ्गाक्षी 'सुधा' दक्षिण, प्रेम रस की प्यास देती
हरित वसना 'सुलक्षणा मंडल' से होकर युक्त क्या
अधखुली अधमुँदी अपलक दृष्टि है आभास देती ?

'अधरपराई' ? दृष्टिको तव प्यार कैसे मान लूँ ?
माया है प्रपञ्च, सत् का सार कैसे मान लूँ ?
अस्थिर जिसका हृदय आज मुझ पर आ गया है
मुझसे न होगा कल यही व्यवहार कैसे मान लूँ ?

भुला दूँगा लोचनों के मोह-माया जाल को
मंजुल वदन स्मित मधुर कुच युगल उत्तालको
सोचता हूँ पर भुला पाऊँगा क्या मैं उम्र भर
सुन्दरतम् नितम्व को और हस्तिनी सी चाल को ?

 →

जिसको कि अनुरूप विधि ने कदली स्तम्भ के वनाया
काट कटि को कुछ कुचों में और कुछ उसमें चढ़ाया
दे नहीं सकती यदि तुम घड़ी भरको वह मधु घट
न जगाओ उसके प्रति मन में तो मम मोह माया

डूब पाऊँगा तभी मैं जा कहीं 'आदर्श' में
जीत पाऊँगा तभी मैं काम से संघर्ष में
तुम ही बोलो पाओगी क्या कर भला विक्षिप्त उसको
लुट गया जो तनिक ही तव नैंनों के स्पर्श में

अगस्त १९५९

याद लेकर जल रहा है

कि कभी जीवन में मेरे भी प्रणय की किरण आई थी
दीप उर में आज भी वह याद लेकर जल रहा है

कि अरमाँ की कली उस रोशनी में खिल उठी थी फूल वनकर
कि अपनी ही जवानी लोचनों में चुभ उठी थी शूल वनकर
कि दिवस भर स्वप्न के संसार में ही उर भटकता था
कि इक कसक ले रात आती थी अकेलापन खटकता था

कि आँखों आँखों में मदहोश जो रातें विताई थीं
हर रात उनमें अश्रु का इक बूँद वन कर ढल रहा है

जान कर भी है अजानी यह डमर, पग उठे तो लौट न पाए
थक गए कह, कुछ नहीं है प्यार, ढलती रात के साए
मंज़िलों की खोज में ही खो गए, गीत के जाने कहाँ स्वर
और प्यासे ही अधर भी रह गए, प्रेम रस में डूब उतराकर

रूप जो मुस्कान वन कर के अधर की राह आया था
आज वह ही उर में मेरे, दर्द वनकर पल रहा है

७ नवम्बर, १९५९

दर्द का साया हूँ मैं

दूर ही मुझसे रहो तुम, कि तुम्हारी
ज़िन्दगी से खेलने आया हूँ मैं........

हर नजर यूँ तो बुलाती पास है
पर जगह दिल में नहीं शायद किसी के
खाता रहा है यह दीवाना दिल मेरा
ठोकरें ही हर कदम पर ज़िन्दगी के

ठोकरें खाकर ही जीना ज़िन्दगी है
बस यही अब तक समझ पाया हूँ मैं

जागते में भी सदा ही नैंनों के आगे
रूप जाने कितने ही बन स्वप्न हैं जागे
मानस में सहसा फूल कोई खिल उठा था
नयन झूमे थे मचल यह दिल उठा था

और अब खोकर हृदय रीते नयन में
लिए उसके शूल की छाया हूँ मैं

तन के जैसा मन का यह सौदा नहीं
एक दफ़ा जो लुट गया सो लुट गया
प्यार है विश्वास दिल का, कुछ नहीं
छलन पाकर उठ गया सो उठ गया

→

प्रीत पर विश्वास खोकर के अमिट इक
प्यास तन की उर में निज लाया हूँ मैं

और अब तक इन दृगों के जाल में
उलझ कर के लुट गई कितनी जवानी
कर पाश में उच्छ्वास में और धड़कनों में
बरबादियों की हैं छुपी कितनी कहानी

कौन जाने कितने ही कोमल दिलों पर
छा गया बन दर्द का साया हूँ मैं

१५ दिसम्बर १९६०

कल्पना टूट चुकी है

हुई पल्लबित कल्पना–
कि
- जाने कब एक रात
हो उठे स्वप्न सजीव
और लाया मैं
लौटा कर वारात.
तुम आ गईं मन्थर गति से
रुक रुक, झुक झुक;
इन्द्र चाप सी सतरङ्गी किरणें
पग पग पर करती विकीर्ण;
और कक्ष की नीलिमा थी
हो उठी विस्तीर्ण.
सहसा ही–
लहराते हुए झीने झीने नीले पर्दे
फरफरा रहे थे जो अब तक,
और विद्युत दीप – कुछ रक्तिम पीत
गर्व से, जगमगा रहे थे जो अब तक,

→

शैय्या के वे पुष्प जूही के
मनोहर, कोमल, श्वेत;
भीनी भीनी सुरभि दे दे
मुस्कुरा रहे थे जो अब तक;
हो उठे मलिन, कुछ दीन
मौन, निःस्पन्द, गतिहीन
रहे देखते बने बने बुत्
अल्हड गति, पयोधर पीन.
ज्यों उतर आई हो आज धरा पर
गगन चन्द्रिका–
ऐसी ले वदन की जोत
औ देख फूटते, तव नयन युगल से
सौ सौ नील कमल की गन्ध
दीपक ने लिए नयन मूँद
हुआ कक्ष में अन्धकार.
पर – नील मणि सी इक आभा
थी फूट रही दीवारों से
क्योंकि–
गतिमान हुए थे मेरे कर

जिस अनुभव से तुम शरमाकर
तम में ही मुस्कुरा पड़ी थी
जिस धवल हास की लगी झड़ी थी
भित्तियों पर; और छन् छन् कर
एक अनूठी आभा थी फूट रही
तव लज्जारक्त रुख़सारों से.
और तव-पर्दे, दीपक, जूही की कलियाँ
कान लगाकर सुनती थीं
और कक्ष की भित्तियाँ
वह अन्धकार, आँखे फाड़ निरखती थी
वह हलचल और विलय, दो छायाओं का
वह एकीकरण, द्वैतका, दो कायाओं का.
वह उष्ण साँसों का सरगम
वह हल्की सिसकारी, जो
तव लव से फूट निकलती थी
हल्के से, हौले से.
वह सीत्कार–
था मीठा मीठा दर्द उठा जो
पहली पहली बार.

→

अव तक का अविजित और अछूता
लघु दुर्ग का कठिन द्वार
सहसा ही टूट गया था
जिसने वहकर निकल रही थी
लाल लहू की तप्त धार.
उफ़ ! यह अनाचार !
यह अत्याचार !
पर–मेरे उस व्यवहार पर
उस–भीषण व्यापार पर
नहीं था हाहाकार
नहीं कोई चीत्कार.
क्योंकि–वह था आत्म समर्पण
चिर प्रतीक्षित, चिर अभिलषित
मनका, तन का
वीते वचपन का
तड़पते यौवन का
और शायद था जनम जनम का
जीवन का.
वह तो शमन था
वह तो दमन था

उर की उत्ताल उमंगों का
चंचल उर्मियों का
मन की आकुलता का
तन की व्याकुलता का.
वह तो छींटे थे शीतल जल के
जो बुझा रही थी प्यास
युगों से प्यासे मन की.
और धधकती बढ़ती ज्वाला
सुलगते तन की.
जो दे बैठी थी हम दोनों को
कसकन, सिसकन,
मन्थन और उत्पीड़न.
रहे कक्ष में हम दोनों निपट अकेले
जाने कब तक.
और डाल गले में बाहें
तुम ले रही थी थाहें
मेरी आँखों में अपनी आँखें डाल.
जैसे चाह रही हो मुझे पिलाना
मस्ती भरी शराब, उन प्यालों में ढाल.

→

या शायद तुमने ही बहक कर
पी ली थी; जी भर कर छक कर
जो छलक छलक पड़ती थी उनसे
अनजाने ही.

पर अब—

मैं जागा हूँ आँखे खोले
सपनों की दुनियाँ में डोले
देख रहा हूँ आज तुम्हारी
अधरों की मुस्कान
वह गर्व से उन्नत भाल
माँग में झिलमिल कुंकुम लाल.
कसी चोली से जूझ रहे
उरोजों की उठान
और तृप्ति से बोझिल, माँसल
कटि का अधोभाग, जंघ जुगल.

क्योंकि—

कल्पना टूट चुकी है
गिर कर मेरे हाथों से.
कक्ष है निपट अँधेरा

→

प्रकृति – नीरव, प्रशान्त.
मैं लेट रहा हूँ उसमें
एकाकी, गम्भीर, नितान्त.
जैसे, चलते चलते राही
बैठ गया हो, थकित, क्लान्त.
नहीं तनिक पर्दों में हलचल,
जैसे हो अवरूद्ध उठा
वातायन का पथ ही सकल.
किन्तु हृदय में मेरे तो
आज उठा है गहरा झंझावात.
पलकों तक आ आकर मुझको
व्याथित करने
टीस देने
कसक देकर लौट रही बरसात.
मन भारी है, भीगा सा है
और धड़क रही छाती है.
तीव्र गति से काँप रहा कर
कि जिसमें––
मेरे भैया की पाती है.
जिसमें है––

तेरी दुनियाँ, सर्वस्व तेरा
जिसके लिए तू दुनियाँ से, दुनियाँदारों से
मँुह मोड़कर बैठा था.
जिसके लिए तूने माँ को माँ
घर को घर
और पिता को, पिता नहीं समझा था
मेरी दुनियाँ, मेरी कविता
प्यार मेरा, मेरी वनिता
मेरी परिचिता, भावी परिणीता
कह कह कर जिस पर
इतराया था, ऐंठा था.
आज – जब कि दूर है तू
अपने अन्य किसी प्रेमी से
ब्याह रचा बैठी है.
जब तक तू लौटे तब तक को
या शायद जीवन भर को
मन बहलाने
या शायद, तन सहलाकर
यौवन की कसक मिटाने
जाने किसको—

अपना वना बैठी है.
तुझसे किए वादों का
तेरी उम्मीदों का
तेरे अरमानों का
और सबके ऊपर – तेरे विश्वासों का
(जिनका कि सम्वल लेकर
तू जीवन भर
उसका ही हो रहने का प्रण कर
उतनी दूर, अपनों से, जा बैठा है)
करके खून–उसकी लाली से
अपनी माँग सजा बैठी है.

घूम रहा है कक्ष यह मेरा
गहनतर हुआ जा रहा अँधेरा
पर्दों में हलचल है
शायद वे गाते हैं
हलचल है दीवारों में
शायद मुस्काते हैं
अश्रु विन्दु न टपक पडें सो
हल चल नयनों के तारों में.

→

मेरे अधरों में कम्पन है
पलकों में आलस्य गहन है
धड़क रही छाती है
तीव्र गति से काँप रहा कर
जिसमें–मेरे भैया की पाती है.
हृता काश के छीटों से
पलकें मेरी धुली हैं
देख रहा हूँ स्वप्न मगर
आँखे मेरी खुली हैं.

सितम्बर ११, १९६१

मैंने तो चाहा था...

मैंने तो चाहा था कि पट जाए वीच का गढ़ा
तुमने और भी मगर वात को दिया वढ़ा
वढ़ा दिलों का फ़ासला

जमीं का चाँद देखकर दिल मेरा ललक गया
मस्त सिम्तें हो उठीं झूम वो फलक गया
मैंने भी मूँद कर पलक चाहा कि हुस्न पी चलूँ
होठों तक पहुँच मगर, जाम वो छलक गया
विन पिए ही वावला, प्यार का वो काफ़िला
मंज़िल में यूँ ही छोड़कर नई डगर निकल चला
मैंने तो......

हर क़दम पे ज़िन्दगी की राह में छला गया
फिर भी झूठे प्यार में मैं डूवता चला गया
तुम्हारे पास आ गया मैं घूमता गली गली
ख़ुशबू तुम्हारी यों उड़ी कि झूमता चला गया
और जव खुली पलक पता लगा कि तव तलक
आ गई है ग़म की शाम और खुशी का दिन ढला
मैंने तो......

हुस्नो इश्क़ के वग़ैर कव कहो जमीं रही
काटने को ज़िन्दगी, तुम नहीं तो मय सही
प्यार जो कि है ख़ुशी, तुमसे इस कदर मिली
अव तो सीने में मेरे, दर्द को जगह नहीं
मैं चला जहाँ जहाँ, चिराग़ जल उठे वहाँ
वक़्त जो गुज़र गया उसे क्या सोचना भला
मैं तो चाहा......
.....?

जब से देखा है तुम्हें...

दिल में रखना यूँ तुम्हें मुश्किल नहीं था
पर रहो तुम ऐसा मेरा दिल नहीं था
मेरे लिए तो आसमाँ का चाँद थी तुम
और ख़ाक मैं जो प्यार के क़ाबिल नहीं था

ये नहीं कि मुझे तुमसे बेदिली हो
तुम हसीं हो तुम जवाँ हो और खिली हो
ज्यों लचीली डाल पर चम्पा कली इक
यह तो क़िस्मत का करम कि तुम मिली हो

जब से मिली तुम, दिल हमारा खो गया है
छोड़ मुझको ये तुम्हारा हो गया है
जान भी कि तुम मेरी मंज़िल नहीं हो
सपने सुहाने देखता ये सो गया है

चाहता हूँ दूर ही रह लो गगन में
खिल न पाओगी कभी उजड़े चमन में
पास न आओ जो तुम अहसान होगा
क्योंकि रहता जुदाई का डर हर मिलन में

और फिर मेरा दिल इक रेगिस्तान है
नाशाद है बरबाद है वीरान है
तुम न रहना आब के धोखे में बिल्कुल
ये तो चमकती रेत की चट्टान है

जाने कितनी आ यहाँ टकरा चुकी हैं
जलती जवानी आँखों में कुछ आस लेकर
जाने कितने लुट गए हैं कारवाँ
आज तक अपने दिलों में प्यास लेकर

मुर्झा चुकी हैं डाल पर कितनी ही कलियाँ
फूल बनने की अधूरी चाह लेकर
बेवसी से पटक कर सिर रह गई हैं
इक घुटी सी एक दवी सी आह लेकर

जव कभी भी मगर मैं हूँ देख पाया
मुझ पर तुम्हारी नज़रों का पड़ना वहककर
भोलेपन से फिर तुम्हारा मुस्कुराना
है रह गया हर वार मेरा दिल कसक कर

वढ़ गई हर वार दिल की धुकधुकी है
वातें हज़ार होठों तक आकर रुकी हैं
कई वार चाहा आँखों से ही वता डालूँ
पा सामने तुमको मगर वो भी झुकी हैं

यूँ तो मैंने रख दिया है सख्त़ पहरा
देख कर लेकिन तुम्हारा रंग सुनहरा
अँगडाईयाँ लेता है जाने क्या करे
मेरे दिल का आख़िर तो शैतान ठहरा

इससे कि पहले वो तुम्हें बेवस वनाए
और नोचे जिस्म का हर एक किनारा
इससे पहले कि तुम्हारा रस लुटे
और आँखों से वहे आँसू की धारा

इससे कि पहले गर्म साँसे सर्द हों
इससे कि पहले सुर्ख आरिज़ ज़र्द हों
इससे कि पहले मैं पड़ूँ निढाल तुम पर
इससे कि पहले मीठा मीठा दर्द हो

मेरी तुमसे वस यही इक इल्तजा है
दूर नज़रों से मेरी तुम चली जाओ
राहें अपनी फेरना मुमकिन न भी हो
मुड़ मुड़ के मुझको देख कर न मुस्कराओ

एक भी लफ्ज़ झूठ वोलूँ मैं अगर
कसम ले लो मुझसे मेरे ईमान की
जव से देखा है तुम्हें मदहोश हूँ
तुम वन गई आफत हो जी की 'जान की'

अगस्त १९६२

जाने हम कहाँ होंगे

जाने हम कहाँ होंगे जव तुझ पे शवाव आएगा
जाने हम कहाँ होंगे जव ये हुस्न कहर ढाएगा

इस चाँद से मुखड़े पे, लुट जाएँगे मैख़ाने
इन नादाँ अँखियों से, छलकेंगे जव पैमाने
रुख़सारों में आ बैठेगी, सूरज की किरण पहली
अँगडाईयाँ लेगी जव होठों पे तेरे विजली
गुमराह हो जाएगी, तसव्वुर किसी शायर की
विखरी हुई जुल्फ़ों का जव चेहरे पे अब्र छाएगा
जाने हम........

कदमों की हर इक आहट शेरों में वदल जाएगी
हर एक पे जव दस वल, नाजुक वो कमर खाएगी
चेहरे से वहक करके इक वार नज़र तेरे
आएगी अचानक और सीने पे ठहर जाएगी
पहाड़ों की चोटियों के नज्ज़ारे नज़र होंगे
अनजाने खिसक कर जव आँचल कुछ ढलक जाएगा
जाने हम........

चितवन का जो भूले से चढ़ता वो कमाँ होगा
मिट जाएगा सौ वार जो इक वार निशाँ होगा
हर तीर वना होगा अफ़साना मुहब्वत का
धड़कन पे हर एक दिल की वस तेरा वयाँ होगा

 →

कट जाएँगी तव रातें, आँखों ही आँखों में
ख़यालों ही ख़यालों में, दिन भी गुज़र जाएगा
जाने........

जव तक कि इश्क क्या है तेरी समझ में आए
जव कि तेरे दिल में अरमान भरे होंगे
जव तक कि तू नज़र की बातों को समझ पाए
हम तो तेरी नज़र के सरहद के परे होंगे
आज हम यहाँ तो तुझे नींद लड़कपन की
जाने हम कहाँ होंगे जव तुझ पे सहर आएगा
जाने हम कहाँ होंगे जव ये हुस्न कहर ढाएगा
जाने हम कहाँ होंगे जव तुझ पे शवाव आएगा

जून १९६३

हसीं सनम से मेरे

ऐ गु.ल ! तू अपने हुस्न पे यों नाज़ न कर
चमन में और भी हैं, ये नज़र अन्दाज़ न कर
जाग उट्ठे न कहीं, सोई हुई क़यामत है
ऐ हवा ख़ामोश ही रह कोई आवाज़ न कर

हसीं सनम से मेरे इस जहाँ में कोई नहीं
कि जिसे देख के माहताव भी शरमाता है
इस कदर शोख़ हैं उसकी नज़र के जलवे
कि जिसे देख के आफ़ताव भी घवराता है

क़ैद हैं जुल्फों में उसके काले काले वादल
सियाह रात वनी उसकी आँख का काजल
कि विजली लेटती लव पे तवस्सुम वनकर
और खड़ी शान से भौंहों पे कमाँ तन कर
सुर्ख़ गालों के तले गुलाव भी छुप जाता है
कि जिसे देख के माहताव भी शरमाता है

वो जव भी चल पड़े तो ये वहार रुक जाए
वो गर मचल उठे तो आसमाँ भी झुक जाए
भर नज़र देख लो तो तारे मुँह छुपाते फिरें
खिलखिला अगर पड़े तो सारे टूट टूट गिरें

→

हर घड़ी चेहरे पे इक रंग नया आता है–
कि जिसे देख के माहताव भी शरमाता है

ख़ामोश हो उठे सरगम जो हँस के वोल दे वो
वहार क्या खिज़ाँ तक में शरावी रंग घोल दे वो
बुत् को भी अगर छू दे बेअख़्तियार थिरक उट्ठे
कि गु.जरे जिस भी राह से वो महक महक उट्ठे
दीद ए हुस्न से हर रंज मुस्कुराता है
कि जिसे देख के माहताव भी शरमाता है

११. ३. १९६८

प्यासे पैमाने कई

ऐ दिल ! अकेला तू नहीं, जाने पहचाने कई
मैं हूँ, मय है और मयख़ाने कई.

इस जहाँ में प्यार कर लेनां कोइ मुश्किल नहीं
वढ़ के तुझको थाम ले पर ऐसा कोई दिल नहीं
कैसी ग़म की दास्ताँ और क्या भला शिकवे गिले
सबका क़िस्सा एक है, तुझ से दीवाने कई
मैं हूँ, मय है और मयख़ाने कई.

भूल जा कि प्यार की थी तेरी भी महफिल कोई
कि था कोई तेरा हमदम हमसफ़र मंज़िल कोई
रोज़ लुटते कारवाँ और जलते आँशियाँ यहाँ
वाग़ उल्फ़त के उजड़ कर वनते वीराने कई
मैं हूँ, मय है और मयख़ाने कई.

संगदिल ने दे दिया है तुझको तो ग़म बेशुमार
जब से बेग़ाना हुआ तू, हम हैं तनहा बेक़रार
मय है मैख़ाने का साथी और मय का दोस्त मैं
साथ मेरे पर सिसकते प्यासे पैमाने कई
मैं हूँ, मय है और मयख़ाने कई.

... ... ?

आराम आ जाए

मेरा दिल एक दुनियाँ है मेरा दिल एक वस्ती है
कोई आवाद करता है, कोई वरवाद करता है

जो तुम चाहो मेरी दुनियाँ में इक तूफ़ान आ जाए
जो तुम चाहो मेरे होठों पे भी मुस्कान आ जाए
जो तुम चाहो इस चलती लाश में भी जान आ जाए
तभी होगा मुहब्वत का कोई पैग़ाम आ जाए
मेरा दिल ... ...

मेरे गीतों को बेमन से सही इक वार दुहरा दो
विछी हैं राह पर आँखें जरा सूरत तो दिखला दो
मिलो जव जव न वोलो पर तवस्सुम लव पे जो ला दो
दिले नादाँ मरीज़े इश्क को आराम आ जाए .....
मेरा दिल ... ...

सितम्बर ३०, १९७२

तुम हो सनम

पुरूष– शरद पूर्णिमा की मधुर चाँदनी सी
मेरे मन के गगन में तुम हो सनम
नारी– मुस्कुराती सुवह के रूपहले किरण से,
नैनों के दर्पण में तुम हो सनम
मेरे मन के गगन में तुम हो सनम
पुरूष– मधुर स्वप्न हो तुम, मेरी ज़िन्दगी की
कवि कल्पना की मधुर नाद हो तुम
नारी– साथी हो तुम मेरे लाखों जनम के
युग युग की मेरी अमिट याद हो तुम
मोहक रसीले गीतों के धुन से,
साँसों के सरगम में तुम हो सनम
मेरे अधरों के कम्पन में तुम हो सनम
नारी– मन प्राण हो तुम साँसों का आधार
जीवन सिंगार दिल की तुम धुकधुकी हो
पुरूष– धरा अवतरित स्वर्ग को अप्सरा हो
कोमल कमल हो कि सूरजमुखी हो
महकती हुई रजनीगन्धा कुसुम सी,
जीवन के उपवन में तुम हो सनम
मेरे मन के गगन में तुम हो सनम
नारी– मुस्कुराती सबह के ... ...
मेरे मन के गगन में तुम हो सनम

जून ६, १९७९

आ भी जा

वहका वहका मौसम है, बिखरी बिखरी चाँदनी
तनहा तनहा हम हैं मगर, दिल के सहारे आ भी जा ...

यादों ने तेरी मरने न दिया
वादों पे जिए हम घुट घुट कर
प्यार न हो वदनाम कहीं
हँसते रहे हम लुट लुट कर

महका महका गुलशन है, सोई हुई कली कली
हौले हौले क़दमों के, दे के ईशारे आ भी जा ....

बुझने को हैं चिराग़ भी
थकी थकी निगाह के
लुटने को कारवाँ भी हैं
ज़िन्दगी की राह के

ठहरा ठहरा आलम है, खोया खोया सा है दिल
डूवी डूवी धड़कनें, तुझको पुकारें आ भी जा

२१ जून, १९७६

तू नहीं है

मदहोश चाँदनी है, है रात भी नशीली
मुझे कैसे रास आए, मेरे साथ तू नहीं है
बेसब्र मेरा दिल है, है वात भी नशीली
किसको मगर सुनाए, मेरे साथ तू नहीं है.

तेरी याद दर्दो–गम का तूफाँ उठा चली है
मुद्दत से दिल में सोए, अरमाँ जगा चली है
नग़मे न फूट पाए, रहे लब थे थरथराते
सैलाव थम गया है, पलकों में आते आते
सीने में ग़म छुपाए, खामोश ज़िन्दगी है
किसको यक़ीन आए, मेरे साथ तू नहीं है.

रह रह के मुझको लूटा मेरी ही बेखु.दी ने
हँस हँस के मौत दी है, मेरी ही ज़िन्दगी ने
सहराओं में भटकता उम्मीदों का जनाज़ा
ओ रहनुमा रहम कर, मेरी इल्तज़ा है आ जा

चाहत की रूह मेरी रो रो बुला रही है
मौसम हँसी उड़ाए, मेरे साथ तू नहीं है

जुलाई १४, १९७९.

तू नहीं है

मदहोश चाँदनी है, है रात भी नशीली
मुझे कैसे रास आए, मेरे साथ तू नहीं है
बेसब्र मेरा दिल है, है वात भी नशीली
किसको मगर सुनाए, मेरे साथ तू नहीं है.

तेरी याद दर्दो–गम का तूफाँ उठा चली है
मुद्दत से दिल में सोए, अरमाँ जगा चली है
नग़मे न फूट पाए, रहे लव थे थरथराते
सैलाव थम गया है, पलकों में आते आते
सीने में ग़म छुपाए, खामोश ज़िन्दगी है
किसको यक़ीन आए, मेरे साथ तू नहीं है.

रह रह के मुझको लूटा मेरी ही वेखु.दी ने
हँस हँस के मौत दी है, मेरी ही ज़िन्दगी ने
सहराओं में भटकता उम्मीदों का जनाज़ा
ओ रहनुमा रहम कर, मेरी इल्तजा है आ जा

चाहत की रूह मेरी रो रो बुला रही है
मौसम हँसी उड़ाए, मेरे साथ तू नहीं है

जुलाई १४, १९७९

……जहाँ हर रुप मर मिटने के लिए था और हर मुस्कान जीने के लिए; हर मित्र मण्डली कवि गोष्ठी थी और हर एक घटना एक कविता………
और—

मन का बावरा पंछो जब तब उड़ निकलता था, यौवन उदधि का विस्तार नापने की कल्पना संजीकर परहर बार थका हारा लौट आता था 'कविता' के पास जो उस असीम सागर में तरणी 'की तरह थी, उसके लिए।

किन्तु एक दिन जब ज्ञात हुआ कि उस तरणी के वक्ष पर उसके लिए कोई स्थान नहीं है तो कल्पनाएँ टूट कर बिखर गईं………
कॉलेज कें रसमय परिवेश से प्रेरित, किशोर हृदय की कतिपय कोमल कल्पनाएँ।